



नई कविता, नवगीत, अकविता, जनवादी कविता, समकालीन कविता

नई कविता: नामकरण और काल निर्धारण

‘नई कविता’ स्वातंत्र्योत्तर भारत में 1951 से 60 की हिंदी काव्य-धारा को कहा जाता है। इसके उद्भव और विकास को लेकर विभिन्न साहित्य इतिहास पुस्तकों में मत भिन्नताएँ मिलती हैं।

कहीं इसका संबंध छायावादोत्तर काल की सभी काव्य धाराओं से जोड़ा गया, तो कहीं इसे 1943 में प्रकाशित होने वाले काव्य ग्रंथ ‘तार सप्तक’ से। कुछ लोगों ने 1943 और 1951 के बीच ‘प्रयोगवाद’ का काल निर्धारित किया है और 1951 में ‘दूसरा सप्तक’ के प्रकाशन से 1960 के बीच को ‘नई कविता’ कहा। नई

कविता की अवधारणा तब से बननी शुरू हो जाती है जब हिंदी काव्य क्षेत्र में पुराने छायावादी काव्य - संस्कार को तोड़कर नए 'काव्य संस्कार' के निर्माण की प्रक्रिया आरम्भ होती है। इस अर्थ में नई कविता, छायावादी काव्य संस्कार का पूर्ण निषेध करती है और अपने पूर्ण विकास को प्राप्त करने के पूर्व प्रगति और प्रयोग की एक दूसरे को काटने वाली काव्य धारा के बीच से अपना रास्ता निकालती है। स्वभावतः

उसका संबंध प्रगतिवाद एवं प्रयोगवाद दोनों के संश्लेषण से है।

20वीं शताब्दी के चौथे दशक में जो नया काव्यांदोलन हुआ, नई कविता का उससे भी संबंध है। प्रथम विश्वयुद्ध के बाद से ही यूरोपीय मानसिकता में भारी परिवर्तन दिखाई देता है। धर्म और अध्यात्म के मूल्य विघटित हो जाते हैं और साम्यवाद की ओर लोगों की निगाह जाती है। लेकिन युद्धोत्तर यूरोपीय मानसिकता साम्यवाद को पूरी तरह स्वीकार नहीं कर पाती है। हवा में '**God that failed**' तथा '**God is dead**' जैसे नारे गूँजने लगते हैं। इसी समय ब्रिटेन के कुछ कवियों ने सन् 1932 में 'न्यू सिग्नेचर' शीर्षक से एक काव्य संग्रह प्रकाशित किया। इन कवियों ने पुरानी काव्य पद्धतियों को अधूरा समझकर नई दिशाओं की खोज की। डॉ.

बच्चन सिंह ने लिखा है 'अज्ञेय की तार सप्तकीय' भूमिका में 'न्यू सिग्नेचर' की प्रतिध्वनि सुनाई पड़ना अस्वाभाविक नहीं है। 1946 में अज्ञेय द्वारा प्रकाशित 'प्रतीक' पत्र इस काव्य आंदोलन को पुष्ट करता है।' जब 'तार सप्तक' में संकलित कविताओं को प्रयोगवादी कहा जाने लगा, तो अज्ञेय ने 'दूसरा सप्तक' की भूमिका में इसका स्पष्ट विरोध किया, तथा छायावाद और प्रगतिवाद के दायरे से बाहर नई संवेदनाओं वाली कविता को नई कविता कहने पर जोर दिया।

डॉ. नदाकशार नवल का पुस्तक 'मुक्तबाध ज्ञान और संवेदना' से यह सूचना मिलती है कि नई कविता नाम की प्रस्तावना अज्ञेय ने पहले पहल अपनी एक रेडियो वार्ता में की, जो 1952 में आकाशवाणी पटना से प्रसारित हुई। बाद में यह वार्ता अज्ञेय की पुस्तक 'हिंदी साहित्य: एक आधुनिक परिदृश्य' में 'नई कविता' शीर्षक से संकलित की गई। अज्ञेय से प्रेरित होकर ही 1953 में इलाहाबाद से एक पत्रिका निकली - 'नये पत्ते'। 1954 में जगदीश गुप्त और रामस्वरूप चतुर्वेदी ने 'नई कविता' नाम से एक पत्रिका निकली और नई कविता को आंदोलन का रूप देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इसलिए ऐतिहासिक दृष्टि से नई कविता 1951 में प्रकाशित 'दूसरा सप्तक' के बाद की कविता को कहा जा सकता है। 'तीसरा सप्तक' 1959 में प्रकाशित हुआ। सन् 60 के बाद हिंदी कविता नई दिशा की ओर मुड़ जाती है। इस प्रकार हम नई कविता विकास को तीन चरणों में चिह्नित कर सकते हैं।

1943 को नई कविता का प्रस्थान वर्ष माना जा सकता है, 1951 से नई कविता का प्रौढ़ विकास शुरू होता है तथा 1959 के बाद इस धारा का अवनयन हो जाता है।

प्र. अकविता: नामकरण और काल निर्धारण (उद्भव की पृष्ठभूमि)

प्र. अकविता क्या हैं? इसकी प्रमुख प्रवृत्तियों पर विचार करें?

सन् 60 तक आते-आते नई कविता का अवसान हो जाता है। साठोत्तरी दशक में नई कविता पुनः एक नए संक्रमण की अवस्था में चली जाती है। यह अवस्था नई कविता की सीमा के कारण आई। जिस तरह छायावादी वायवीयता को तोड़ने के लिए आरंभ में वक्तव्यवादी कविताएँ लिखी गई। उसी प्रकार नई कविता से अपने आपको अलग करने के लिए साठोत्तरी दशक के युवा कवियों ने एक खास तरह की ध्वंसकारी मुद्राएँ दिखाई। यह अतिवाद, नई कविता के तथाकथित सौन्दर्यवादी रूझान को तोड़ने के लिए आवश्यक था। हर आने वाली नई पीढ़ी, पुराने से अपने आपको अलग करने के लिए कई बार अतिवाद की सीमा को भी पार कर जाती है। साठोत्तरी दशक में ऐसा ही हुआ। इस दशक की कविता वस्तुतः नई कविता के मुहावरे को पूरी तरह तोड़कर आगे आने वाली कविता के लिए रास्ता तैयार करती है। इस क्रम में वह पुराने

वह कई बार सुरुचिपूर्ण काव्य उद्यानों को भी नष्ट कर डालती है। इसे ही हिंदी साहित्य के इतिहास में 'अकविता' कहा गया।

सातवें दशक में कई छोटी बड़ी धाराएँ, उपधाराएँ उभरती, विलीन होती, एक दूसरे को काटती तथा कभी एक दूसरे में मिलती हुई दिखाई देती हैं। शायद इसलिए इस दौर में नित नए नामों का शोर सुनाई देता है - अकविता, अस्वीकृत कविता, युवा कविता, अपरम्परावादी कविता आदि-आदि। इन नामों की बहुत लंबी सूची है। इस दशक में कवियों की जो नई पीढ़ी आई, उसे भी तरह तरह के नाम दिए गए- भूखी पीढ़ी, कबीर पीढ़ी, विद्रोही पीढ़ी। लेकिन इन विभिन्न और विचित्र नामों में एक सामान्य प्रवृत्ति सहजता से लक्षित की जा सकती है। वह है निषेध और अस्वीकार की प्रवृत्ति। हालाँकि कुछ आलोचकों ने इस दशक में एक दूसरी प्रवृत्ति का भी उल्लेख किया है और उसे पूर्वोक्त प्रवृत्ति से ज्यादा रचनात्मक माना है। वैसे आलोचकों के अनुसार पहली प्रवृत्ति रूमानीयत का पूरा निषेध करती है, और दूसरी एक खास तरह की राजनीतिक सजगता

की प्रवृत्ति है। पहली का संबंध राजकमल चौधरी, जगदीश चतुर्वेदी आदि की कविताओं से है तो दूसरी का धूमिल आदि की कविताओं से है। लेकिन ध्यान यह रखना चाहिए कि दोनों में पुराने काव्य संस्कार और सौंदर्यभिरुचि को लेकर जबरदस्त विरोध भाव है। वस्तुतः निषेध, विरोध, अस्वीकार, उग्रता, आक्रामकता दोनों जगह बरकरार है। यह सही है कि एक में यह प्रवृत्ति अराजक भी हो जाती है जबकि दूसरी में राजनीतिक समझदारी के कारण इसका प्रतिबद्ध स्वर ज्यादा मुखर हुआ है। आठवें दशक में यह स्वर ज्यादा संतुलित हो जाता है और नवप्रगतिशील तथा जनवादी कविता सामने आती है।

विषय-वस्तु के बदलाव के साथ अकविता के रचनाओं के रचनाकारों ने कविता को नई भाषा और नए मुहावरे दिए। उन्होंने सहमति की भाषा की जगह विरोध की भाषा का सृजन किया। उन्होंने ऐसी भाषा का तिरस्कार किया जो सजी-संवरी और कटी-छंटी है। धूमिल ने लिखा - 'इन बेलमुत्ती इमारतों में अर्थ खोजना व्यर्थ है।' इन कवियों को न तो लोरियों की भाषा ग्राह्य है और न हरी-भरी शब्दावलियाँ, क्योंकि धूमिल के शब्दों में-

‘लहलहाती हुई फसलें

बहती हुई नदी

उड़ती हुई चिड़ियाँ.....

यह सब सिर्फ तुम्हें गँगा करने की चाल है।’

इसलिए धूमिल जैसे कवियों ने शब्दों का चुनाव अपने गांव के खेत-खलिहान के सख्त चेहरे तनी, हुई मुट्ठियों, राजनीतिक विसंगतियों, फुटपाथों मोचियों, भोगियों के जीवन से चुना। हालांकि अकविता की भाषा में जुमलेबाजी और नग्नता पर्याप्त मात्रा में है। कहीं-कहीं तुकों से खिलवाड़ किया जाता है और पाठकों को चौंकाने के लिए लटकों-झटकों का भी इस्तेमाल किया गया है। लेकिन जैसा कि डॉ. बच्चन सिंह लिखते हैं कि इस भाषा में तुकों और चौंकाने वाले लटकों के बावजूद कर्म की एक कठोरता सर्वत्र दिखाई पड़ती है।

साठोत्तरी कविता

साठोत्तरी कविता 1960 के बाद की कविता है। यह सत्य अण्वेषण अनुभूति की गरिमा, अस्मिता रक्षा एवं दायित्वबोध से युक्त है।

साठोत्तरी कविता के मुख्य घटक/प्रवृत्ति अधोलिखित आधारों पर समझा जा सकता है।

अकविता, साठोत्तरी हिंदी कविता का सर्वाधिक मुखरित स्वर है, जिसके प्रवर्तक डॉ. श्याम परमार एवं जगदीश चतुर्वेदी हैं। इसको निषेध की कविता अर्थात् कविता के विरुद्ध कविता भी कहा गया है। जिसके मूल में विसंगतिबोध प्रमुख है। यह अंतरविरोधों, विभाजित व्यक्तित्व एवं परिपक्व निर्वेक्ता की द्योतक है। उत्तर आधुनिक में इस प्रथम सोपान में रचनाकार पाठक पर अपना विचार आरोपित नहीं करता 'क्यों कि प्रत्येक विचार तर्क की कसौटी पर गलत साबित हुए है-

‘पर जब सभी कुछ उल हीं जुलूल है,
सोचना फिजूल है।’

सौमित्र मोहन संबंधों को हृदय से नहीं वरन् समीकरणों पर आधारित बताते हैं-

‘यदि कोई जीने की शर्त है, तो यही कि
आदमी सड़क का कुत्ता बन जाए.

या बीबी का गुलाम या एयर इंडिया का विज्ञापन।’

पूँजीवाद के प्रभाव में भाषा भी पेशेवर हो गई है। जिसे धूमिल स्पष्ट करते हैं-

‘अब यहाँ कोई अर्थ खोजना व्यर्थ है,

पेशेवर भाषा के तस्कर संकेतों में अर्थ, खोजना व्यर्थ है।’

अकविता को यदा-कदा अंवागर्द लेखन भी कहा गया है तथा आरोप लगाया गया कि इसकी रचना कुछ मनोरोगियों ने की है। परंतु यह पूर्णतः निषेध काव्य नहीं है। वरन् प्रौढ़ मानसिकता की देन है। यह कोरी भावुकता की नहीं सहज स्पंदन की कविता है।

नवगीत

1959 में तार सप्तक के तृतीय प्रकाशन के बाद साहित्य में नवगीत विधा की शुरुआत होती है। छायावादी रूमानी गीत का अप्रत्यक्ष प्रभाव नवगीत पर है जो लोग चेतना लोक धुनों, एवं लोक जीवन में तत्वों को आधार देती है। इनके प्रमुख रचनाकारों में रविन्द्र भ्रमर, रमेश रंजक, शंभुनाथ सिंह, रामानाथ अवस्थी, परमानंद श्रीवास्तव, एवं ओम प्रभाकर हैं। नवगीत में लोक गीत एवं लोक बिम्बों की बहुलता के कारण एक अलग तरह की जीवन्तता है—

‘रंग के भाग ठिठोली लिखी है

रूप के भाग में चीर

अपने तो भाग मजूर के भाग है,

भाल पै श्याम लकीर’

1964 में 'कविता' पत्रिका के संकलन में नवगीत का प्रकाशन हुआ। 1980 के बाद इसमें जनवादी चेतना भी दृष्टिगोचर होती है। यदा-कदा पराजय और अवसाद बोध भी दिखता है।
रमानाथ अवस्थी-

‘मेरे पंख कट गए हैं
वरना मैं गगन को गाता।’

वर्तमान जीवन के द्वन्द्व एवं संघर्ष की, आधुनिकता बोध एवं प्रगति की, अभिव्यक्ति नवगीत में मिलती है। शंभुनाथ सिंह के शब्दों में-‘नवगीतकार गाने के लिए भावातिरेक के कारण और मन को बहलाने के लिए ही गीतों की रचना नहीं करता। वह चिंतन के लिए विचार स्तर पर अपनी प्रस्थापना के लिए गीतों की रचना करता है।’

उसके गीत यथार्थ की स्वीकारने वाले विवेक को जागृत करने वाले शारिरिक और मानसिक स्वास्थ्य के प्रतीक कैप्सूल हैं।' साठोत्तरी कविता छायावादी संस्कारों प्रगतिवादी सैद्धांतिक विचारों एवं प्रयोगवाद से पूर्णतः मुक्त होने का प्रयास है। यहाँ रघुवीर सहाय की पंक्तियाँ द्रष्टव्य है-

‘कितना अच्छा था छायावादी। एक दुःख लेकर वह एक गम देता था। कितना कुशल था प्रगतिवादी, हर दुःख का कारण पहचान लेता था, कितना महान था गीतकार जो दुख के मारे अपनी जान देता था। कितना अकेला हूँ मैं इस समाज में जहाँ सदा मरता है एक और मतदाता।’

प्रगतिशील जनवादी कविता

प्रगतिशील जनवादी कविता, जीवन को संपूर्णता में देखती है। इस पर 1965-75 तक राजनीतिक घटनाओं राज्यों में विपक्षी दलों की सरकारें एवं उग्र जन आंदोलन व अतिक्रांतिकारिता का प्रभाव है वही 1975 (आपाकाल) के बाद क्रमशः अतिक्रांतिकारिता खत्म होती है तथा लोकतांत्रिक व्यवस्था के प्रति जागरूकता बढ़ती है। जनवादी कविता मुख्य मुद्दे हैं- सांप्रदायिकता, बेलगाम अपराध, अर्थ-राजनीति व अपराध- धर्म का गठजोड़, बाजारवादी संस्कृति का तिरस्कार तथा हिंसक राजनीति को समर्थन। 1980-90 का दशक सांप्रदायिकता के उभार का दूसरा दौर है। यह सांप्रदायिकता धार्मिक स्तर पर ही नहीं, व्यवस्था में चरित्र को भी उद्धटित करता है। देवी प्रसाद मिश्र के शब्दों में-

‘हसन नाम जान लेवा हो सकता है,

अमृत यह नाम भी निरापद नहीं,

बहुत सुरक्षित नहीं हैं आप, महंगू नाम के साथ,

बलबीर सिंह नाम के खतरे तमाम है।’

इस तंत्र में सिर्फ आपका नाम, आपकी हत्या का सब हो सकता है।

जनवादी कविता सामंती समाज एवं मानसिकता को तोड़ने के साथ हिंसक बदलाव को समर्थन देती है। आलोक धन्वा के 'गोली दागो पोस्टर में'—

‘यह कविता नहीं है
यह गोली दागने की समझ है,
जो तमाम कलम चलाने वाले को,
तमाम हल चलाने वालों से मिला रही है।’

जनवादी कविता में आम आदमी का जीवन तथा उसकी पूरी संघर्ष चेतना व पीड़ा अभिव्यक्त होती है—

‘पेशेवर हाथों एवं फटे हुए जूतों के बीच
कहीं न कहीं एक अटूट आदमी है,
जिस पर टांके पड़ते ही
जो जूते से झांकती हुई
अंगुली की चोट छाती पर
हथौड़े की तरह सहता है।’

बाजारवादी संस्कृति को जनवादी कविता तिरस्कृत करती है तथा उस संभावना पूर्ण मनुष्य को सम्मानित करती है। मनुष्य के विलुप्त होते स्वाभिमान एवं पहचान को संरक्षित करने की कोशिश करती है-

‘तिलचट्टों की तरह
पैदा नहीं हुए हैं नीम अंधेरो में
दीमक की तरह नहीं, सीलन भरी जगहों में
उस आदिम स्त्री की कोख में
मनु का प्यार बन कर धरती पर आए
हमारी कहानी पत्थरों से आग पैदा करने की कहानी है।’

पर्यावरण का प्रश्न, विस्थापन की समस्या, साहचर्यता एवं संबंधों का विनाश प्रासंगिक है जिसे प्रेमरंजन अनिमेष की कविताएँ आदर देती हैं-

‘क्या सच में एक दिन स्वच्छ जल
रह जाएगा सिर्फ नारीयल में.....
और खाली बांस की खोल में
स्वच्छ हवा
क्या सच में एक दिन
झींगुरों के पास ही रह जाएगी पुकार
और चिड़ियों को भी
सुबह का पता नहीं चलेगा।’

जनवादी कविता के आशा और विश्वास भरे स्वर में बड़बोलापन नहीं है, यह अंधेरो को और सूर्योदय की प्रकृति को पहचानती है-

‘सूर्योदय

अचानक से घट जाने वाली

अनायास घटना नहीं है

क्षण-क्षण टूटना है अंधेरो का।’

निष्कर्षतः प्रगतिवादी चिंतन (1936-43), स्वतंत्र भारत के बदलते राजनीतिक सामाजिक एवं आर्थिक हालात में नए रूप में तथा नए विषयों के साथ प्रगतिशील जनवादी कविता में दिखाई देती है।

प्रश्न:- समकालीन कविता के सामाजिक सरोकार पर विचार करें?

समकालीन कविता (1980-90 दशक से लेकर आज तक), कई काव्य पीढ़ियाँ, अनेक धाराओं एवं अनेक काव्य शैलियों को समाहित करती है। यह समय और समाज को पहले की कविता की तुलना में ज्यादा सजगता, प्रखरता तथा संतुलित तरीके से अभिव्यक्ति देती है। इसके अतर्गत आधुनिकतावादी व्यक्तिवादी धारा, प्रगतिशील जनवादी धारा, नवगीत एवं अन्य धाराएँ, समग्र रूप से अभिव्यक्त होती हैं।



इसके केन्द्र में लघु या महामानव नहीं वरन् सामान्य मानव है। यह पूरे परिवेश से जूझते हुए आदमी की कविता है।

बाजारवाद, उपभोक्तावाद, विज्ञापनवाद अर्थात् बाजार का यह छद्म, मनुष्य विरोधी है जिस पर लगभग सभी समकालीन कवियों ने अभिव्यक्ति दी है। यह भारतेन्दु युग के बाजारवाद से अधिक जटिल और संश्लिष्ट प्रभाव डालता है। आम आदमी इस बाजारवाद में मात्र उपभोक्ता है जिसकी स्मृतियाँ और संवेदनाएँ क्षरित हो रही हैं। केदारनाथ सिंह की बाजार शीर्षक कविता-

आओ बाजार चलें,

उसने कहा बाजार में क्या है

बाजार में धूल है,

धूल में क्या है? जनता।

उसने बेहद सादगी से कहा। धूल और जनता की तलाश में हम दोनों चल पड़े,

वहाँ पहुँच कर हमें आश्चर्य हुआ।

बाजार में न धूल थी न जनता दोनों को साफ कर दिया गया था।'

अथवा

‘मेरे पास न पूँजी थी न पण्य

मैं बाट भी न था कि हाट के आता काम।’